मृदुला सिन्हा

मृदुला सिन्हा (जन्म 1942) एक भारतीय लेखिका और राजनीतिज्ञ हैं, जो वर्तमान में गोवा के राज्यपाल के रूप में कार्यरत हैं। मुजफ्फरपुर जिले का छपरा गाँव (बिहार) उनका जन्म स्थान है। उनके पिता बाबू छबीले सिंह और माँ अनूपा देवी थीं। छपरा के स्थानिक स्कूल में पढ़ाई की और बाद में लखीसराय जिले के बालिका आवासीय विद्यालय, बालिका विद्यापीठ में पढ़ाई की। राम कृपाल सिन्हा से शादी हुई, जो उस समय बिहार के मुजफ्फरपुर शहर में स्थित एक कॉलेज में व्याख्याता थे। विवाह के बाद, मृदुला ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि ली। 25 अगस्त, 2014 को, उन्हें गोवा के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया गया। अपने राजनैतिक कार्य के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में लेखनी चलाई जिनमें उपन्यास, कहानियाँ तथा स्त्री मुक्ति पर लेखन किया। इनके उपन्यासों में 'नई देवयानी', 'घरवाँ', 'जो मेहंदी को रंग', 'सितापूनी बोली' चर्चित हैं। 'बिहार की लोक-कथाएँ' तथा 'ढाई बीघा जमीन' शीर्षक से कहानी संग्रह हैं।

कथा सार

वैश्वीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण के वर्तमान युग में गाँव और गाँव की खेती-बाड़ी का महत्त्व कम आँका जा रहा है। गाँव और खेती की तुलना में महानगर, महानगर की पैकेज वाली नौकरी, गाड़ियाँ महत्त्वपूर्ण बन गई हैं। इसी वर्तमान मानसिकता में बदलाव लाने वाली मृदुला सिन्हा की यह कहानी है। रामबाबू की बेटी सुभद्रा ने अपने जीवन में पहले तो गाँव की पुश्तैनी जमीन के महत्त्व को नहीं समझा, लेकिन बेटे मनीष के पैकेज वाली नौकरी पर मंदी के कारण गाज गिर आई तो यही 'ढाई बीघा जमीन' बुरे दिनों में संजीवनी बन गई। जहाँ पैकेज वाले, फ्लैट, गाड़ी खरीदने वाले नवयुवक आत्महत्या करने को मजबूर

हो रहे थे तब यही 'ढाई बीघा जमीन' सुखी जीवन जीने का आधार बन गई। यह कहानी शहरीकरण की तुलना में गाँव, गाँव की खेती को जीवन जीने का आधार मानकर वहीं जीवन-जीने के स्रोत ढूँढ़ने को प्रेरित करती है। खेती बेचकर महानगर की ओर भागने वाली नई पीढ़ी को यह कहानी सोचने के लिए मजबूर करती है और शहरीकरण, वैश्वीकरण और औद्योगीकरण के मायाजाल से भारतीयों को बाहर निकालने का सफल प्रयास भी करती है।

ढाई बीघा जमीन

जमीन, जहाँ खेती होती है, वह तो साढ़े सात बीघा ही थी। एक-एक कोला की मेंड़ पर खड़े होकर देख आए थे रामबाबू। और हिसाब के शिक्षक को यह हिसाब लगाते देर नहीं लगी थी कि रामचरण सिंह के तीनों पुत्रों के बीच बँटवारे में ढाई-ढाई बीघा जमीन ही आएगी। मन-ही-मन हो रही उनकी गणना को उनके साथ चल रहे चूड़ामणि सिंह ने भी सुन लिया था। बोले, "मास्टर साहब, आप अपनी बेटी को क्यों गड्ढे में धकेल रहे हैं? लड़के के सिर पर मात्र ढाई बीघा जमीन पड़ेगी। क्या खाएगा-खिलाएगा? कैसे परिवार पालेगा?

रामबाबू असमंजस में पड़ गए थे। क्या बोलते? यह सच था कि वह लड़का उन्हें पसन्द आ गया था। देखने-सुनने में सुन्दर था। नौकरी करता था। रेलवे में किरानी हुआ तो क्या! सुविधाएँ-ही-सुविधाएँ होती हैं रेलवे की नौकरी में। यहाँ तक कि बच्चों को भी नौकरी लग जाती है। रामबाबू को डर था तो चूड़ामणि सिंह के प्रचारक स्वभाव का। अपनी बेटी के लिए वर ढूँढ़ने और घरद्वार, जमीन-जत्था देखने तथा गाँववालों से उस परिवार के सदस्यों का स्वभाव जानने-समझने के लिए उन्होंने उस गाँव में पाँच दिनों तक डेरा डाले रखा था। उनके साथ आए दो लोग तो लौट गए। एक की भैंस बिआनेवाली थी। दूसरे के परिवार में कोई हादसा हो गया। बच गए सिर्फ चूड़ामणि। रामबाबू ने गाँववालों से भी अलग हट-हटकर बातें कीं। समवेत स्वर में अनुशंसा थी, "लड़का हजारों में एक है।" बात अटक गई थी तो सिर्फ उसके सिर पर की जमीन पर, वह भी चूड़ामणि के मन पर। क्योंकि वे ही सोते-उठते रामबाबू के निर्णय लेते मन पर लड़के के सिर पर ढाई बीघे जमीन का हथौड़ा मार देते। निर्णय का अंकुर चकनाचूर हो जाता।

रामबाबू ने कहा, "चूड़ामणि, तुम समझने की कोशिश करो। लड़के के सिर पर जमीन की औकात तब देखी जाती थी, जब उसकी जीविका का साधन मात्र जमीन होती थी। अब तो लड़का नौकरी करता है। जमीन दो बीघा हो या सौ बीघा, क्या फर्क पड़ता है?"

चूड़ामणि कहाँ माननेवाले थे, बोले, "मास्टर साहब, भगवान् न करे, बिटिया के लिए कोई बुरा दिन आए। पर लड़के के साथ कुछ अनहोनी हो जाने पर जमीन ही रखवाला बन जाती है। यह भी तो लड़की के पिता को देखना पड़ता है।"

''हाँ-हाँ! नौकरी देनेवाले भी ये सारी सावधानियाँ बरतते हैं। तुम चिन्ता मत करो।''

रामबाबू को डर था तो यह कि गाँव-जवार में चूड़ामणि बात फैला देगा, लड़के के सिर पर मात्र ढाई बीघा जमीन है। लड़के के दरवाजे पर दो बड़े-बड़े पुआल के टाल (ढेर), दो जोड़ी बैल, एक भैंस, एक गाय, एक टायर गाड़ी नहीं दिखा इसे। पर व्यक्तिगत बातों में निर्णय के समय भी इस समाज-भय को अपने मन से हटाना रामबाबू के लिए आसान नहीं था। पिछले साल अपने चचेरे भाई रामहुलास द्वारा बेटी का ब्याह तय करते समय स्वयं रामबाबू अड़ गए थे, ''कैसे तय करेगा विवाह! लड़के के सिर पर न जमीन है, न जायदाद। लड़की को पानी में फेंकना है क्या? हम नहीं होने देंगे यह रिश्ता।'' दरअसल उस 'हम' (समाज) की अवहेलना नहीं कर सकता था कोई। तभी तो स्वयं रामबाबू समाज-भय से आतंकित थे। समाज की खरी-खोटी सुनने का भय त्याग आखिर उन्होंने हिम्मत जुटाई। अपनी बेटी के लिए वर और घर वही चुना।

बराती को दरवाजे लगाकर जनवासे लौट जाने पर रामबाबू ने कई स्त्रीपुरुषों से पूछा, ''लड़का पसन्द आया?''

सबों के उत्तर का सारांश यही था, ''शकल-सूरत से लड़का तो ठीक है। पर इसके सिर पर तो ढाई बीघा जमीन ही है न!'' अर्थात् चूड़ामणि ने अपना काम कर लिया था।

विवाह के बाद बेटी-दामाद बाहर ही रहने लगे। दामाद किशोर का तबादला भी होता रहा। कभी-कभी रामबाबू भी चले जाते। बेटी-दामाद के साथ रहते। दोनों नातियों के जन्म होने पर तो उन्हें बेटी के साथ रहना और भी सुखद लगता। कभी बेटी ने ढाई बीघा जमीनवाले घर में ब्याहने का उलाहना नहीं दिया। उसे फुरसत ही कहाँ थी। घर में पैसे की तंगी होती तो शायद अपने भाग्य और पिता के निर्णय को कोसती सुभद्रा। यदा-कदा किशोर के दिल में अवश्य अपने सिर पर की जमीन छूट जाने की आह उठती। वह कहता, ''गाँव में स्कूल टीचर होने का विशेष फायदा है। तनख्वाह के साथ आराम भी मिलता और खानदानी जमीन का भी फायदा हो जाता।''

सुभद्रा अपने पति के मन का काँटा व्यावहारिक बुद्धि की सूई से निकालती, ''जमीन जोतना क्या आसान है? उसमें भी लागत लगती है। वह भी तुम्हारे गाँव की जमीन! एक ही साल में दो-तीन बार बाढ़ आती है।''

''आखिर दोनों भाइयों के परिवार का गुजारा उसी जमीन से हो रहा है न!''

''गुजारा क्या हो रहा है। अभी बच्चे छोटे हैं, जैसे-तैसे पल जाएँगे। उनके बड़े होने पर पढ़ाई-लिखाई और विवाह के लिए बार-बार तुमसे ही पैसे की माँग होगी।''

किशोर पत्नी से विशेष नहीं उलझता था। उसकी व्यावहारिक बुद्धि के आगे हार मान बैठा था। जब तक माँ-बाबूजी थे, साल में एक बार दोनों गाँव जाते। सुभद्रा अपने गाँव भी जाती। उसके बाबूजी रामबाबू के मन का चोर बेटी के विवाह के पन्द्रह-बीस वर्ष बाद भी घात लगाए बैठा था। उन्हें डर था—बेटी कहीं कह न दे, 'बाबूजी, आपने सिर पर ढाई बीघा जमीनवाले लड़के से मेरा ब्याह क्यों रचाया? और ऐसा किया भी तो मुझे क्यों नहीं बताया?'

दरअसल ब्याह के लिए लड़का तय करने के बाद रामबाबू उसकी नौकरी के गुण ही गाते रहते। अपने घर के अन्दर ढाई बीघा जमीन की चर्चा ही नहीं की। उस बार जब सुभद्रा अपनी ससुराल गई, पड़ोस की एक सास व्याकुल आत्मा उससे कुछ बात करने के लिए कब से समय की तलाश में थी। सुभद्रा को अकेले में पाकर बोली, "किशोर नौकरी क्या करने लगा, तुम लोगों को अपनी खानदानी जमीन की चिन्ता ही नहीं रही। किशोर के दोनों बड़े भाई ने मिलकर इसी वैशाख में एक बीघा जमीन बेच ली। तुम्हारे हिस्से के रुपए भी नहीं दिए। आखिर अभी जमीन का बँटवारा नहीं हुआ तो तीनों भाइयों का हिस्सा होगा न?

सुभद्रा के मन में भी पति के सिर पर के जमीन की लालच का अंकुर फूटा। उसकी पड़ोसन सास ने गरम लोहे पर हथौड़ा मारा, "मैं तो कहती हूँ, बँटवारा करवा लो। अपने हिस्से की जमीन बटैया लगा दो या उन्हीं भाइयों को जोतने-कोड़ने के लिए दे दो। कम-से-कम जमीन बेचेंगे तो नहीं। न जाने कब काम आ जाए। नौकरी तो ताड़ पेड़ की छाया है। जमीन, जमीन ही होती है, दुर्दिन में माँ बन जाती है। और अपने हिस्से को क्यों छोड़ना!"

सुभद्रा के मन के नवांकुर की सिंचाई हो गई थी। पड़ोस की सास भी अपना काम बन जाने के सन्तोष के साथ ही घर वापस गई। दूसरे तीर से उसने एक और घाव कर दिया था, "जमीन ही कितनी है। किशोर के सिर मात्र ढाई बीघा पड़ेगी। उसके अलावे घरारी, बथान, फुलवारी भी है। भाई तीन हैं न! तुम्हारे ददिया ससुर और मेरे ससुरजी आधे के हिस्सेदार थे; पर मेरे पति उनके इकलौते बेटे। और हमारा भी एक। इसलिए मेरे बेटे के सिर पर तो दस बीघा है। दो पीढ़ियों में जमीन बँटी नहीं।

सुभद्रा इस बार ससुराल जाने पर बहुत-सी दुनियादारी की बातें सीख आई थी। उसने किशोर से कहा, "एक काम करो, अपना तबादला सीतामढ़ी स्टेशन पर करवा लो। गाँव भी पास हो जाएगा, खेती भी करवा लिया करेंगे।"

दो बच्चों की पढ़ाई का बहाना बहुत बड़ा था। इसलिए भाइयों के आगे बँटवारे का प्रस्ताव रखने की हिम्मत की औकात की इज्जत भी रह गई। तब तक सुभद्रा के सिर से खेती करवाने के नए शौक का भूत भी उतर गया था। पर विवाह के बीस वर्ष बाद एक और भूत सवार हुआ था-पिता से लड़ाई करने का भूत!

आखिर उसके पिता ने वैसे लड़के से क्यों ब्याहा, जिसके सिर पर मात्र ढाई बीघा जमीन थी! पिता की बीमारी का समाचार पाकर उसे दुबारा गाँव जाना पड़ा। अपने पिता से शिकायत करने के लिए उसका मन लुसफुसाता था। परन्तु मरण-शय्या पर पड़े थे रामबाबू। बेटी शिकायत करने की हिम्मत नहीं जुटा पाई। पिता ने ही एकांत पाकर कहा, "सुभी, मेरे मन पर एक बोझ है। तुम्हारा विवाह तय करते समय मैंने बहुत सोचा। मैं भी ऐसे लड़के से तुम्हारा विवाह नहीं करना चाहता था, जिसके सिर पर...।"

उन्हें खाँसी आ गई थी। पिता का कलेजा सहलाती सुभद्रा ने वाक्य-पूर्ति कर दी थी, "मात्र ढाई बीघा जमीन थी।"

"हाँ हाँ!" "बड़ी मुश्किल से बोल पाए रामबाबू, पर अपनी आँखों में उमड़े जल के रंगों द्वारा अपना छुपा दर्द प्रकट कर गए। बेटी ने आश्वासन दिलाया, "बाबूजी, आपकी बेटी गाँव की अपनी उन हमउम्र बेटियों से ज्यादा सुखी है, जिनके पिता ने मात्र लड़के के सिर पर पचास या सौ बीघा जमीन देखकर विवाह किया। बस, आप मेरी चिन्ता नहीं करें।"

फिर तो मन हलका हो गया। आँखें ऐसी मूँदीं कि फिर खोलीं ही नहीं। शान्ति पूर्ण मृत्यु के लिए पिता को सांत्वना देना और बात थी। पर सुभद्रा के मन पर ढाई बीघा जमीन कम नहीं रही थी। अचानक पति की मृत्यु हो जाने पर उसकी भी शहर में रहने की समस्या आ खड़ी हुई थी। बड़े बेटे की रेलवे में ही नौकरी लग जाने पर मकान की समस्या हल हो गई। साल भर बाद ही दोनों बेटों को ब्याहने की तैयारी करने लगी। छोटा बेटा कंप्यूटर इंजीनियर था। दस लाख का पैकेज मिलता था। 'पैकेज' का अर्थ और व्यवहार समझने में सुभद्रा को कई महीने लगे। कई रिश्ते आए। दोनों कमाऊ पुत्तर थे। सभी लड़कीवालों को सुभद्रा कहना नहीं भूलती, "मेरे बेटे के सिर पर पुश्तैनी जमीन भी है।"

सबों का एक ही जवाब था, "है तो क्या? आज कौन नौजवान खेती करने जाता है, नौकरी है न!"

एक लड़कीवाले ने कहा, "बहनजी, क्या आपको अपने पति के सिर पर की जमीन का फायदा हुआ? नहीं न! फिर इन बच्चों को क्या फायदा होगा? आपके बेटे की नौकरी बरकरार रहनी चाहिए, बस!"

और उन्होंने अपनी बेटी का रिश्ता पक्का कर दिया था। गाँव से दोनों बड़े ताऊ-ताई और उनके बच्चे भी आए थे। चूड़ा, चावल, दाल, घी और सब्जियाँ लेकर आए थे। बातों-बातों में उन्होंने ही दूसरे मेहमानों को बताया, "अब हमारे गाँव की जमीन की कीमत बहुत बढ़ गई। बाँध बँध गया है। बाढ़ भी नहीं आती। बार-बार आई बाढ़ ने हमारी जमीन उपजाऊ बना दी है। जमीन सोना उगलती है। हमारे बच्चे भी खुशहाल हैं। शहर की नौकरी तो ताड़ की छाँव है, आज है तो कल

नहीं। पुश्तैनी जमीन तो माँ के बराबर होती है, जिसकी छाया सिर से कभी नहीं हटती। सन्तान के सुखी जीवन से माँ भले ही दूर हो जाए, दुर्दिन में जमीन संजीवनी बन खड़ी होती है।''

विवाहोत्सव के कार्यों में लगी सुभद्रा के कानों में ये बातें भी पड़कर अपना स्थान बनाती रहीं। विवाह का आयोजन समाप्त हुआ। दुलहन घर आई। ताइयों ने खूब सराहा बहू के लक्षण को, दान-दहेज की भी प्रशंसा की। बड़ी जेठानी गाँव जाते समय बोलीं, ''सुभद्रा, कभी-कभी गाँव आ जाया करो। बच्चों को पाल-पोस दिया, अब क्या? अब तो गाँव भी शहर जैसा है। और बहू से गृह-देवता की पूजा भी तो करवानी है।''

''आऊँगी दीदी, आऊँगी।''

सुभद्रा ने तो ऐसे ही कह दिया था। उसे कहाँ फुरसत थी! दोनों बेटों के दो घर, एक अलीगढ़ और एक गुड़गाँव। एक करोड़ का फ्लैट लिया था मनीष ने। छह लाख की गाड़ी भी थी। सब कर्जे पर। वह सबकुछ था, जितने को जुटाने में कइयों की उम्र गुजर जाती थी। स्वयं सुभद्रा और किशोर ने भी इतने सरंजाम नहीं सहेजे। मनीष के यहाँ तो अब बस घरवाली की कमी थी। कई रिश्ते आए। सुभद्रा उन दिनों गुड़गाँव के फ्लैट में ही रहती। सब सुख था। पर एक ही कमी। दिन भर अकेले रहने का दुःख! सुबह 7 बजे निकलकर रात्रि के 8-9 बजे आता मनीष।

सुभद्रा ने कहा, ''तुम अपनी कंपनी के बँधुआ मजदूर हो क्या? यदि ऐसी स्थिति रही तो कौन लड़की तुम्हारी पत्नी बनकर घर में रहेगी?''

मनीष मुसकराया था। जिस लड़की से उसका विवाह निश्चित हुआ, उसे भी सात लाख का पैकेज मिलता था। छह महीने बाद विवाह होना था। इस बीच ही मन्दी की हवा बह गई। विश्व में मन्दी। पैकेजवालों की धड़कनें तीव्र हो गईं, क्योंकि वे सबसे ऊँचाई पर थे। मन्दी की बयार भी तो सबसे पहले ऊँचाई को ही प्रभावित करेगी। करोड़टकिया फ्लैट, दस लाखी गाड़ियाँ, बीवियाँ सब बोझ लगने लगीं। पर वे जाएँ तो जाएँ कहाँ?

और एक दिन वही हुआ, जिसकी आशंका प्रकट की जा रही थी। मन्दी का पहला प्रहार पैकेज पर ही हुआ। गुड़गाँव के अधिकतर फ्लैट के रंग बदरंग हो गए। मनीष चुपचाप रहने लगा था। सुभद्रा चिंतित थी। उसने एक दिन बेटे को डाँटा, ''बोलते क्यों नहीं? अब तो विवाह की तैयारी करो। शहनाई बजवाऊँगी मैं। उसका बयाना तो दे दो। शादी के और भी सरंजाम बुकिंग कराने हैं। अब दिन ही कितने बचे हैं।''

मनीष चुप रहा। उसी शाम नौकरी से बरखास्तगी की चिट्ठी आ गई थी। और दूसरे ही दिन लड़कीवाले ने दूरभाष पर विवाह का रिश्ता तोड़ने की सूचना दे दी।

मनीष ने चुप्पी भंग की, ''अब क्या होगा, माँ?''

माँ को सोचने में एक दिन लगा था। बहुत सोच-समझकर बोली, "बेटा! मैं क्या कह सकती हूँ। विशेष पढ़ी-लिखी भी नहीं। एक उपाय मन में आया है, गाँव लौटने का। चलो, वहाँ जमीन भी है और मेरे हिस्से की एक बड़ी कोठरी और आँगन का कोना। तुम्हारे पापा के सिर ढाई बीघे जमीन होने का बड़ा शोर सुना था। हमने उसका उपयोग नहीं किया। नौकरी करते थे। उनकी नौकरी की अनुकंपा नौकरी बड़े बेटे को मिली। पुश्तैनी जमीन तुम ले सकते हो। यह किसी की अनुकंपा नहीं, तुम्हारा हक है।"

मनीष माँ के सुझाव पर आश्चर्य प्रकट कर गया। "हाँ, मैं ठीक कहती हूँ।" "क्या?" वह अनमना-सा बोला।

"यही कि गाँव चलो। कम-से-कम तब तक जब तक मन्दी रहे। देखना, फिर दिन बहुरेंगे तुम्हारे भी, पैकेज के भी। जिन्दगी तो बितानी होती है, बेटा। पैकेज के सहारे या पुश्तैनी जमीन के सहारे, क्या फर्क पड़ता है।"

मनीष ने हामी तो नहीं भरी थी, पर रात को माँ-बेटे दोनों को अच्छी नींद आई थी। सुबह का अखबार हाथ में लेकर मनीष गाँव जाने की योजना बना रहा था। उसके एक मित्र द्वारा आत्महत्या करने की खबर फोटो के साथ छपीं थी। वह भी पैकेजवाला नौजवान था, शादीशुदा।

माँ चाय ले आई थी। मनीष लिपट गया माँ से। बोला, "माँ, चलो, अभी गाँव चलते हैं।"

सुभद्रा बुदबुदाई थी, "कभी सुना था-जेवर सम्पत्ति का शृंगार और विपत्ति का आहार होता है, पर तुम्हारे लिए तो पुश्तैनी जमीन ही विपत्ति का आहार बन रही है। ढाई बीघा ही है तो क्या, तिनके का सहारा।"

मनीष माँ की ओर ऐसे देख रहा था, मानो जीवन में पहली बार आभार प्रकट करने का मन बन आया हो। रुक गया मनीष। उस भाव और चिन्ता को कृतज्ञता से निपटाया नहीं जा सकता था। उसने माँ की गोद में सिर छुपा लिया था, जहाँ मन्दी का हलका झोंका भी कभी नहीं पहुँचता। वह सावन-भादों की नदियों समान भरी रहती हैं—छलकती भी हैं, सूखती नहीं।